International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

भारत में पंचायती राज व्यवस्था सत्ता के विकेन्द्रीकरण का प्रमुख आधार

सलिल यादव[1], प्रो. (डॉ.) दिनेश सिंह[2]

[1](शोधार्थी) राजनीति विज्ञान विभाग, जी.एस.एच.पी.जी. कालेज, चाँदपुर स्याऊ, बिजनौर सम्बद्ध महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड़ विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

[2](पर्यवेक्षक) अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, जी.एस.एच.पी.जी. कालेज, चाँदपुर स्याऊ, बिजनौर सम्बद्ध महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड़ विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान निर्माताओं ने संघात्मक व्यवस्था को अपनाते हुए अनुच्छेद–1 के अन्तर्गत यह उल्लिखित किया कि ''भारत राज्यों का एक संघ होगा''। वर्तमान समय में भारतीय संघ में 28 राज्य और 8 केन्द्रशासित क्षेत्र सम्मिलित हैं। इस संघ में संघीय व्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषताएँ (केन्द्र एवं इकाईयों के मध्य शक्तियों का विभाजन, लिखित संविधान और संघीय न्यायपालिका की स्थापना) विद्यमान है। कालान्तर में, सरकारों द्वारा भारत में स्थानीय स्वशासन की विकास के अन्तर्गत महात्मा गाँधी की इच्छाओं के अनुरूप पंचायतों की स्थापना तथा 73वें संविधान संशोधन, 1992 के तहत पंचायतों को अनुच्छेद–243 में संवैधानिक दर्जा, और पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों तथा सभी वर्गों की महिलीओं को 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान कर लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अत्यधिक मजबूत किया है।

मुख्य–वर्डः भारत, संविधान, सरकार, पंचायत, लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण।

परिचय

भारत में संघीय व्यवस्था का स्वरूप संविधान द्वारा निर्धारित किया गया है। जिसमें संघीय व्यवस्था के साथ–साथ एकात्मक व्यवस्था के तत्व भी शामिल हैं। परन्तु भारतीय संविधान में केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन तीन सूचियों के रूप में किया गया है। संघ सूची में राष्ट्रीय महत्व के विषय शामिल हैं, जैसे रक्षा, विदेश नीति, रेलवे आदि। राज्य सूची में राज्यों के लिए महत्वपूर्ण विषय शामिल हैं, जैसे पुलिस, स्थानीय शासन, स्वास्थ्य आदि। समवर्ती सूची में केंद्र और राज्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण विषय शामिल हैं, जैसे शिक्षा, श्रम, विवाह आदि। लेकिन भारतीय लोकतंत्र में आधार (सुदूर ग्रामीण क्षेत्र) तक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की शुरूआत सम्पूर्ण संविधान लागू (26 जनवरी, 1950) होने के पूर्व स्थानीय स्वशासन को संगठित करने हेतु 1948 में भारतीय संविधान के भाग–4 (राज्य के नीति निदेशक तत्व) के अनुच्छेद–40 (राज्य ग्राम पंचायतों को स्वशासन की इकाईयों के रूप में संगठित करने के लिए कदम उठाएगा) को वास्तविक धरातल पर उतारने के उद्देश्य से 'केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री' राजकुमारी अमृत कौर की अध्यक्षता में भारत के सभी प्रान्तों के स्थानीय शासन मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने कहा, ''किसी भी लोकतंत्र की सही व्यवस्था का आधार स्थानीय स्वशासन है, और उसे होना ही चाहिए। हम लोग सम्भवतः शिखर पर जितना लोकतंत्र के बारे में सोचने की आदत बना चुके हैं, शायद उतना निचले स्तर पर नहीं। शिखर पर लोकतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक आप नीचे इसकी आधारशिला न बना लें।''

1952 में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने ग्रामीण जनता के जीवन स्तर में वृद्धि के लिए 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' एवं 'राष्ट्रीय विस्तार सेवा कार्यक्रम' फोर्ड फाउण्डेशन की मदद से विकेन्द्रीकरण व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने का प्रयास किया। नेहरू सरकार के द्वारा सामुदायिक विकास कार्यक्रम के बेहतर क्रियान्वयन के लिए 1956 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया। समिति ने 1957 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए कई महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उन सुझावों में एक प्रमुख सुझाव त्रिस्तरीय पंचायती राज (गाँव स्तर– ग्राम पंचायत, खण्ड/ब्लॉक स्तर– क्षेत्र पंचायत एवं जिला स्तर– जिला पंचायत (उदाहरण, उत्तर प्रदेश)) की स्थापना से सम्बन्धित था। बलवंत राय मेहता समिति की सिफारिशों के बाद सर्वप्रथम नेहरू जी ने 02 अक्टूबर (गाँधी जी के जयन्ती अवसर पर) 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज को लागू किया। उसी वर्ष आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में पंचायती राज व्यवस्था को लागू किया गया। परन्तु 60 के दशक में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में अनेक संकटों (भारत–चीन युद्ध, 1962 एवं भारत–पाकिस्तान युद्ध, 1965) और खाद्यान्न तथा आर्थिक संकट की समस्याएँ उत्पन्न होने के परिणामस्वरूप पंचायती राज व्यवस्था का

प्रभावी क्रियान्वयन नहीं हो सका। इन समस्याओं के बावजूद असम, मैसूर (कर्नाटक), उड़ीसा, पंचाब तथा उत्तर प्रदेश में 1961 तक इसके पश्चात् महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, मध्य प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में 1963 तक पंचायती राज व्यवस्था को अपनाया गया।

अन्य समितियाँ तथा उनके सुझावः–

(1) राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, चुनाव प्रणाली, भविष्य में समेकित ग्रामीण विकास, पंचायती राज संस्थाओं को अपनी भावी भूमिका निभाने, पंचायती राज संस्थाओं, सरकारी प्रशासन तंत्र तथा ग्रामीण विकास तथा स्वयं सेवी संस्थाओं के बीच सहयोग एवं पंचायती राज संस्थाओं को सौंपी जाने वाली जिम्मेदारियों को निभाने के लिए पर्याप्त धन के उद्देश्य से 24 मार्च, 1977 को मोरारजी देसाई के नेतृत्व में 'जनता पार्टी' की सरकार का गठन हुआ। 'जनता पार्टी' की सरकार ने बलवन्त राय मेहता समिति (1958) की सिफारिशों की असफलता को ध्यान में रखते हुए, उसे पुर्नजीवित करने हेतु दिसम्बर 1977 में 'अशोक मेहता समिति' की स्थापना की, जिसने 1978 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी, जिसमें कुल 132 सिफारिशें की गयी थीं।

समिति ने अगस्त 1978 में अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी। समिति ने सिफारिशें देने से पूर्व तत्कालीन पंचायत व्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए उसके विकास को तीन चरणों में विभाजित किया–प्रथम, उभार काल (1959–64), द्वितीय, गतिरोध काल (1965–69) एवं तृतीय, पतन काल (1969–77)। अशोक मेहता समिति की प्रमुख निम्न सिफारिशें थी– द्विस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था, जिसमें जिला परिषद एवं मण्डल पंचायत नामक दो स्तरों का उललेख, 15 से 20 हजार आबादी या 10 से 15 गाँव के लिए मण्डल पंचायत का गठन, समिति ने जिले स्तर को सर्वाधिक महत्व दिया तथा इसे जनपद स्तर पर योजनाओं के निर्माण के लिए उत्तरदायी और कार्यकारी निकाय के रूप में माना, पंचायतों के चुनाव में सभी स्तरों पर राजनीतिक दलों की भागीदारी को औपचारिक मंजूरी, समिति ने पंचायती राज संस्थाओं को करारोपण की शक्तियाँ एवं अपने संसाधनों को उगाहने की शक्ति देने की अनुशंसा, राज्य सरकारों के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं के कार्यकरण में हस्तक्षेप नहीं करना, पंचायतों में 'अनुसूचित जाति एवं जन जातियों' को उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटें आरक्षित करना, पंचायती राज वित्त निगम' की स्थापना तथा पंचायतों के विघटन के पश्चात् 06 महीनें की अवधि में ही चुनाव कराने, राज्य सरकार के मंत्रालयों में पंचायती राज मंत्री की नियुक्ति, राज्य के निर्वाचन आयोग के द्वारा पंचायतों के चुनाव कराना, विकास पंचायत से अलग एक 'न्याय पंचायत' की स्थापना जिसका अध्यक्ष एक न्यायाधीश हो, आदि।

(2) सरकार द्वारा अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को अपर्याप्त माना गया और इसे लागू करने से इनकार कर दिया गया। तत्पश्चात 1978 में 'दाँतेवाला समिति' का गठन किया गया। समिति ने पंचायतों के नियोजन से सम्बन्धित दो महत्वपूर्ण सुझाव दिये– खण्ड स्तर पर नियोजन की व्यवस्था और गाँव, जनपद एवं राष्ट्रीय स्तर पर नियोजन को अन्तर्सम्बन्धित करने पर बल दिया।

(3) जी.वी.के. राव समिति को योजना आयोग ने ग्रामीण विकास एवं गरीबी निवारण कार्यक्रम की समीक्षा के लिए 1985 में नियुक्त किया था। समिति ने अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कहा कि ''विकास प्रक्रिया धीरे–धीरे नौकरशाही और पंचायत राज से तलाक दे रही है।'' साथ ही समिति ने पंचायती राज व्यवस्था के सशक्तीकरण के लिए निम्न सुझाव दिये– लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की येाजना में जिला स्तर के निकायों का महत्व, जिला और निचले स्तर पर पंचायती राज संस्थान को ग्रामीण विकास की योजना, क्रियान्वयन और निगरानी के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का सुझाव, वित्त आयोग का गठन, पंचायती राज संस्थानों के लिए नियमित चुनाव कराने एवं कार्यकाल को पाँच वर्ष करना एवं पंचायतों में त्रिस्तरीय ढाँचा अपनाने पर बल दिया।

(4) राव समिति के प्रतिवेदन के पश्चात् भारत सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को सशक्त एवं सुदृढ़ बनाने के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने 'लोकतंत्र एवं विकास के लिए पंचायतों के पुनर्जीवन' नामक समिति की स्थापना एल.एम. सिंधवी की अध्यक्षता में की गई। समिति ने सरकार को निम्न सुझाव दिये– पंचायतों को संवैधानिक आधार प्रदान किये जायें, त्रिस्तरीय पंचायतों का गठन किया जाये। इसके तीनों स्तर इस प्रकार होंगे– ग्राम स्तर, खण्ड स्तर एवं जिला स्तर, पंचायतों के चुनाव एक निश्चित अवधि में संपन्न कराने के लिए एक निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की जाए, वित्त आयोग के प्रभावी कार्यकरण के लिए पर्याप्त सुझाव दिये जायें, पंचायतों में विवाद निपटाने के लिए न्याय पंचायत का गठन किया जाये एवं राजनीतिक दलों की भूमिका को हतोत्साहित किया जाये।

(5) दिसम्बर, 1987 से जून 1988 के दौरान उत्तरदयी प्रशासन विषय पर जिलाधीशों की विभिन्न स्थानों पर पाँच कार्यशालाएँ सम्पन्न हुईं। इन कार्यशालाओं में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने भाग लिया। इन कार्यशालाओं ने पंचायतों को मजबूत आधार प्रदान करने के लिए कई सिफारिशें पेश किया। जिसमें, उत्तरदायी प्रशासन के लिए स्थानीय स्तर पर प्रजातांत्रिक ढाँचा होना चाहिए, पंचायतों के लगातार चुनाव होने आवश्यक हैं। चुनाव के साथ–साथ यदि पंचायतें अपनी संवैधानिक जिम्मेदारी पूरी नहीं कर रही हैं तो उचित 'सेफगार्ड' के साथ उन्हें समाप्त करने का प्रावधान भी होना चाहिए, अनुसूचित जाति व अनुसूतिच जनजाति तथा महिलाओं के लिए आरक्षण होना चाहिए, कार्य व शक्तियों का हस्तान्तरण स्थानीय पंचायतों के स्तर पर साफ–सुथरे तरीके से होने के साथ ही वित्तीय संसाधनों का हस्तान्तरण राज्य स्तर से जिला स्तर पर ऐसे होना चाहिए जैसे केन्द्र स्तर से राज्य स्तर पर होता है, राज्य वित्त आयोग की स्थापना होनी चाहिए, राज्य स्तर से संसाधनों के हस्तान्तरण के अलावा पंचायतों को स्वयं भी संसाधन जुटाने चाहिए, जिला स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र व नगरी क्षेत्र को मिलाकर सम्पूर्ण जिले की योजना बनाने के लिए समिति होनी चाहिए, जिसकी जिम्मेदारी जिला परिषद को दे देनी चाहिए, इसके सदस्यों में, सांसदों एवं विधायकों को भी शामिल किया जाना चाहिए एवं समिति का

कार्यपालक अधिकारी होना चाहिए। बेहतर होगा कि जिलाधीश ही उस दायित्व का निर्वाह करे, आदि सम्मिलित थे।
(6) पी.के. थुंगन समिति की स्थापना सन् 1988 में भारत सरकार के तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के द्वारा 'कार्मिक लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय' की 'संसदीय सलाहकार समिति' की एक उपसमिति श्री पी.के. थुंगन की अध्यक्षता में की गयी। यंगुन समिति को जिला स्तर की योजना के लिए जिले में किस प्रकार राजनीतिक एवं प्रशासनिक संरचना स्थापित किया जाये, पर विचार करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। समिति के द्वारा जो सुझाव दिये गये वे इस प्रकार थे– पंचायतों को संवैधानिक मान्यता प्रदान करना, नियोजन एवं विकास का उत्तरदायित्व जिला परिषदों को सौंपना, पंचायतों का कार्यकाल पाँच वर्ष निश्चित हो और उनका नियमित एवं समयानुसार चुनाव कराया जाना, जिस प्रकार केन्द्रीय एवं राज्यों के दायित्वों की सूची बनाई गयी है, उसी प्रकार पंचायतों के दायित्वों से सम्बन्धित सूची बनाने, आदि का सुझाव दिया।

64वाँ संविधान संशोधनः–

पंचायती राज व्यवस्था को सुदृढ़ तथा सशक्त बनाने एवं संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिए पी.के. थंगुन समिति की सिफारिशों के पश्चात तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी ने मई, 1989 में 64वाँ संवैधानिक संशोधन विधेयक संसद में पेश किया। यह विधेयक लोक सभा में तो पारित हो गया लेकिन राज्य सभा में पारित नहीं हो सका। विपक्ष ने सरकार पर आरोप लगाया कि यह विधेयक राज्य सरकारों को नजरंदाज करता है। उसका कहना था कि इसके जरिए केन्द्र सरकार सीधे ही पंचायतों से सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है, जो लोकतांत्रिक प्रणाली के विपरीत है। इस विधेयक में, त्रिस्तरीय (ग्राम, खण्ड एवं जिला) पंचायत की व्यवस्था, जिन राज्यों की जनसंख्या 20 लाख से कम है वहाँ द्विस्तरीय व्यवस्था, पंचायतों का कार्यकाल पाँच वर्ष, पंचायतों का नियमित वयस्क मताधिकार के द्वारा चुनाव, चुनाव का दायित्व निर्वाचन आयोग, कार्यकाल के पूर्व पंचायतों के विघटन पर, 06 माह के भी पुनः चुनाव, राज्य सरकार द्वारा पंचायतों का आर्थिक सहयोग, अनुसूचित जातियों एंव जन जातियों के लिए आरक्षण, महिलाओं के लिए कुल स्थानों में 30 प्रतिशत स्थानों का आरक्षण, आदि प्रमुख विषय शामिल थे।

73वाँ संविधान संशोधनः–

1989 में आम चुनाव हुए जिनमें राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह के नेतृत्व में गठित हुई। इस सरकार ने एस.आर. बोम्बई की अध्यक्षता में वैकल्पिक विधेयक बनाने की सिफारिश दी और इस विधेयक को 1990 में मुख्यमंत्रियों की बैठक में रखा गया। बैठक में विभिन्न राज्यों के मुख्य मंत्रियों ने इस विधेयक की संस्तुति दे दी। लेकिन 07 नवम्बर 1990 को लोक सभा भंग हो जाने के कारण संसद इसे पारित न कर सकी। 1991 में पी.वी. नरसिम्हाराव के नेतृत्व में कांग्रेस के पुनः सत्ता में आने पर मंत्री स्तरीय समिति की सिफारिशों के आधार पर 16 सितम्बर, 1992 को संविधान का 73वाँ संशोधन विधेयक पेश किया गया। 22 दिसम्बर को लोक सभा एवं 23 दिसम्बर को राज्य सभा ने इसे निर्विरोध पारित कर दिया। मध्य अप्रैल 1993 तक 17 राज्यों ने इसकी पुष्टि कर दी (संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार ऐसे संशोधनों पर आधे राज्यों की पुष्टि आवश्यक है)। इसके पश्चात 20 अप्रैल 1993 को इसे राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हो गयी और पुनः क्रमांकित कर उसी वर्ष 24 अप्रैल को यह संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम, 1992 के रूप में लागू हो गया। उसी वर्ष इस संशोधन के द्वारा संविधान में एक नये भाग (भाग–9) को जोड़ा गया, जिसमें कुल 16 अनुच्छेद– 243 (क) से अनुच्छेद 243 (त) तक तथा एक नयी अनुसूची–11वीं अनुसूची भी शामिल हुई।

73वाँ संविधान संशोधन का उद्देश्यः–

भारत में पंचायतीराज संस्थाएँ लम्बे समय से अस्तित्व में रही हैं, लेकिन इनके लगातार चुनाव न होने के कारण राज्य सरकार द्वारा शक्तियों के नाम पर अंगूठा दिखाने से, कमजोर वर्ग, खासकर अनुसूचित जाति–जनजाति का उचित प्रतिनिधित्व न होने व महिलाओं की भागीदारी न के बराबर होने से ये संस्थाएँ जनमानस की इच्छाओं व आकांक्षाओं को पूरा नहीं कर सकीं। पूर्व की तमाम खामियों को देखते हुए इस अधिनियम के अन्तर्गत निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये–

1. गाँव व ग्राम के समूह स्तर पर ग्राम सभा का गठन।
2. पंचायतों का ग्राम पंचायत व अन्य स्तरों पर गठन।
3. सभी स्तरों पर सदस्यों का प्रत्यक्ष निर्वाचन।
4. अनुसूचित जाति–जनजाति के वर्गों का उनकी संख्या के अनुपात में सदस्य व अध्यक्ष के लिए आरक्षण।
5. महिलाओं के लिए सदस्य व अध्यक्ष पदों के लिए कम से कम एक–तिहाई आरक्षण।
6. पाँच वर्ष का कार्यकाल और यदि किसी कारण से पंचायतों को निरस्त कर दिया गया हो तो 06 माह के अन्दर पुनः चुनाव।
7. राज्य को निर्देशित करना कि वे पंचायतों को इतने कार्य, अधिकार व शक्तियाँ प्रदन करें, जिससे कि वे स्वायत्तशासन की संस्थाएँ बन सकें और अपने स्तर पर आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय की योजनाएँ बना सकें।
8. पंचायतों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए राज्य विधानमण्डल उन्हें उचित निधि (फण्ड) उपलब्ध कराये तथा उन्हें कर लगाने की शक्ति भी प्रदान करें।

9. पंचायत की आर्थिक स्थिति को सशक्त करने हेतु प्रत्येक पाँच वर्ष पश्चात् वित्त आयोग का गठन किया जाये।

निष्कर्षः–

महात्मा गाँधी के सपनों के अनुरूप न केवल ग्राम स्वराज की संकल्पना को भारतीय संविधान में स्थान प्रदान किया गया। बल्कि स्वतंत्रता के पश्चात भारत की विभिन्न सरकारों ने समय–समय पर भारत के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में विकेंद्रीकरण की व्यवस्था को आधार तक पहुंचाने हेतु पंचायती राज व्यवस्था को सशक्त बनाने का निरंतर प्रयास किया है। 73वाँ संविधान संशोधन 1992 उन्ही प्रयासों का प्रतिफल है। इस संविधान संशोधन के प्रावधान एवं उद्देश्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान समय में पंचायतो के माध्यम से लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को मजबूती प्रदान की गई है। प्रायः विभिन्न माध्यमों से पंचायत की सफलताओं की अनेक गाथाएँ भी सुनने और देखने को प्राप्त होती रहती हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि इसके अंदर खामियों से इनकार किया जा सके। हम यह आशा कर सकते हैं कि आने वाले समय में पंचायत के अंदर कार्य करने वाले प्रतिनिधि, प्रशासन, सरकार और उससे जुड़े अन्य लोग मौजूद खामियों को दूर करते हुए लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के इस महत्वपूर्ण आधार को और अधिक मजबूती प्रदान करेंगे।

सन्दर्भः

1. वर्थवाल, सी.पी. 'स्थानीय स्वशासन', सुलभ प्रकाशन, लखनऊ–2010, पृ.173–175।
2. सिंह, वी.पी., 'ग्राम पंचायतों में जन–सहभागिता' विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी– 1992, पृ. 67।
3. महीपाल, 'पंचायतीराज – अतीत, वर्तमान और भविश्य' सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 29।
4. महेश्वरी, श्रीराम, 'भारत में स्थानीय स्वशासन', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन–2000 पृ. 125–129।
5. दूबे, डॉ. अवधनारायण, 'नयी पंचायती राज व्यवस्था' मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2002 पृ. 49–51।
6. महीपाल, 'पंचायती राजः चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ', राष्ट्रीय पुस्तक व्यास, भारत, 2014, पृ. 21–22।
7. दुबे, डॉ. अवध नारायण, 'पंचायती राज बदला स्वरूप,' मिश्रा ट्रेडिंग कारपोरेशन, वाराणसी, 2002 पृ.22।